'जल थल मल' पुस्तक की समीक्षा

ज्योति*

पुस्तक - जल थल मल
लेखक - सोपान जोशी
प्रकाशक - राजकमल प्रकाशन लिमिटेड, नई दिल्ली
संस्करण- पहला, सितम्बर 2018

''दिल्ली को बाग-बगीचों का शहर कहा जाता था। चाहे आज यहाँ रहने वालों को इसकी भनक तक न हो, फिर भी वे दिल्ली के पानीदार इतिहास को जाने-अनजाने याद करते हैं। जब शहर को इलाकों के नाम से पुकारे जाते हैं। हौजखास, मोती बाग, धौला कुआं, झील खुरेजी, हौज रानी, पुलबंगश, खारी बावली, अठपुला, लाल कुआं, हौजे शम्सी, पुल मिठाई, दरियागंज, बारहपुला, नजफगढ़ झील, पहाड़ी धीरज, पहाड़गंज, सतपुला, यमुना बाजार..,'' कुछ इसी तरह की जानी-अनजानी मगर चौंका देने वाली जानकारी से *सोपान जोशी* की शोधपूर्ण लिखी किताब *'जल थल मल'* अपने प्रवाह में पाठकों को बहा ले जाती है। किताब के अन्दर दिए गए विवरण के साथ प्रभावित करने वाले चित्र भी मौजूद हैं, जिनका चित्रांकन सोमेश कुमार ने किया है।

यह किताब सन् 2016 में गाँधी शांति प्रतिष्ठान से छपी थी और सन् 2018 में इस किताब को राजकमल प्रकाशन ने छापा है। किताब की विषयवस्तु को दस दिलचस्प अध्यायों में बांटा गया है। और प्रत्येक विषय के साथ अतीत, वर्तमान और भविष्य से जोड़ते हुए जल, थल और मल संबंधी शोध, उदाहरण, जानकारियाँ, मिथक कथाएँ, मान्यता, विचार, प्रचलित परम्पराएं आदि को संतुलित भाषा में रखा गया है। पहले शीर्षक *'जल, थल और मल'* में पृथ्वी की उत्पत्ति और उस समय मौजूद जीवों की पर्याप्त चर्चा की गई है। हर धर्म में पृथ्वी की उत्पत्ति संबंधी कहानियाँ मिलती हैं लेकिन विज्ञान इन कहानियों से परे तथ्यों और प्रमाणों के साथ जीव और जीवन की कहानी बताता है। इस जीवन तक पहुँचने की लम्बी प्रक्रिया रही है। क्या हमारी पृथ्वी हमारी ऐसी नानी या दादी है जो हजारों सालों से अपने होने की कहानियाँ हमें सुना रही है? इस सवाल के साथ इस पाठ को दिलचस्पी से पढ़ा जाना चाहिए।

'हर जीव का शरीर पृथ्वी के उर्वरकों का एक छोटा-सा संग्रह है। मृत्यु होने पर यह रचना जब टूटती है तब ये उर्वरक किसी और जीव के आकार में फिर जन्म लेते हैं।' किताब में ऐसी ही कुछ सरल पंक्तियों से इस पृथ्वी पर जीवन के चक्र को समझाया गया है। शुचिता के तीन कोने वाले विचार से जुड़ा होना बताया गया है। इसका एक हिस्सा पानी, दूसरा मिट्टी और तीसरा हमारा शरीर और उसका अपव्यय से जुड़ा हुआ होना है। सही भी है। हमारे जीवन के पूरे चक्र में हम इन तीनों ही तत्व से जुड़े हुए हैं। हमारे मध्यकालीन संतों की वाणियाँ हों या घर में बड़े बुजुर्गो का फलसफा, यही बताता है कि जिस मिट्टी से जन्म लिया है, उसी मिट्टी में मिल जाना है।

जब मल अथवा इस शब्द की ही चर्चा होती है तब हमारे अंदर घिन (घृणा) का भाव आता है। लेकिन क्या बात यहीं तक सीमित है? इसका जवाब है, कतई नहीं। पुस्तक मल के बारे में चर्चा करते हुए उसके शरीर से निकलने के बाद उस अपशिष्ट का सफर हमारे दौर में क्या है, बताती है।

* *शोधछात्रा, जवाहर लाल नेहरू विश्वविद्यालय, नई दिल्ली।*

काम, इलाज, रोजी-रोटी की तलाश में आये लोगों को शौच की समस्याओं का सामना करना पड़ता है। यही नहीं, इस कारण फैलने वाली बीमारियों के शिकार बच्चे अधिक बनते हैं, किताब इस पहलू पर भी बात करती है।

'*सफाई के मंदिर में बलि प्रथा*' अध्याय में हर रोज सीवर में सफाई के लिए उतरने वाले लोगों की मौत, महज मौत नहीं बल्कि वह बलि के समान है, की चर्चा की गई है। हमारे घर सुबह दस्तक देने वाले अखबार में सीवर में मरने वाले व्यक्तियों और उनके मरने की खबरें आम हैं। उसके बाद बलि रूपी मौतों पर राजनीति की पकती रोटियों में मुआवजा भी सहज है। हम एक समाज और मानव के तौर पर गमगीन होना भूलते हुए लोग हैं। लेकिन क्या विडम्बना और त्रासदी यहीं खत्म होती है? नहीं, बिलकुल नहीं। पुस्तक के अनुसार फरवरी 2013 की संसद की एक रपट में दर्ज है कि भारत में 26 लाख सूखे शौचालय हैं। इनमें कोई आठ लाख ऐसे हैं जिन्हें सफाई कर्मचारी अपने हाथों से साफ करते हैं। ये आंकड़ें सन् 2011 की जनगणना से निकले हैं। कानून तो बहुत हैं लेकिन जमीन पर ये कानून रेंगने लगते हैं। लेखक ने विस्तार से मैला ढ़ोने की प्रथा और इसमें मजबूरी में संलग्न व्यक्तियों की चर्चा गई है।

'*शरीर से नदी की दूरी*' शीर्षक पाठ में हमारे मल और उसका विसर्जन तक के सफर का वर्णन है। इस अध्याय में लेखक ने सन् 1858 में लंदन की टेम्स नदी के नाली में बदलने की घटना का जिक्र किया है। उस साल सूखा पड़ा और गर्मी ने तंग किया। ऐसे में नदी में बहाया गया मल खौल गया और पूरे शहर को 'द ग्रेट स्टिंक' का सामना करना पड़ा। नाक में न दिखने वाली महक जो बदबू थी, घुसी। मल और उसका निपटान एक महत्वपूर्ण और राजनीतिक विषय बन गया। क्या हमारी यमुना भी अगर संसद के किनारे होती तब हमारे राजनेता राजनीति करने के बदले कुछ अहम प्रयास करते, जैसा इंग्लैंड ने 19वीं शताब्दी के मध्य में किया? सड़ता हुआ मल और मरता हुआ जल, हमारी यमुना रोज ढ़ोती है। लेखक ने इस अध्याय में युरोप के इतिहास में नदियों को नाले के रूप में बदल दिए जाने और उन्हें पाट दिए जाने की कहानी रखी है। सीवर जैसी व्यवस्था में मल को नदियों में 99.9 प्रतिशत पानी के साथ बहाया जाता है। इससे नदी तो दूषित होती ही है, साथ ही जल की भारी हानि होती है। लेखक ने महान चिन्तक कार्ल मार्क्स की पुस्तक 'कैपिटल' में लिखी गई एक महत्त्वपूर्ण टिप्पणी को उद्धृत किया है- ''*उपभोग से निकला मैला खेती में बहुत महत्त्व रखता है। पूंजीवाद अर्थव्यवस्था इसकी भव्य बरबादी करती है। मिसाल के तौर पर लंदन में 45 लाख लोगों के मल-मूत्र का कोई और इस्तेमाल नहीं है उसे टेम्स नदी में डालने के सिवा, और वह भी भारी खर्च के बाद।*''

पुस्तक के अगले अध्याय का नाम '*गोदी में खेलती हैं इसकी हजारों नदियाँ*' है। पुस्तक के अनुसार उत्तरी दिल्ली के वजीराबाद में यमुना दिल्ली में प्रवेश करती है और इसी बिंदु पर यमुना का 80 प्रतिशत पानी हम प्रदूषित कर देते हैं। यमुना के कुल लम्बाई का महज 2 प्रतिशत यह हिस्सा शहरों के शहर दिल्ली शहर में आता है। मनुष्य और नदियों के बीच के रिश्ते को उजागर करते हुए लेखक कई अन्य नदियों से जुड़ी जानकारी देते हैं कि कैसे हमने अपनी नदियों को जीवन के बदले जहर की सौगात दी है। तमाम तरह की राज्य और केंद्र सरकार की परियोजना नदियों को बचाने में विफल साबित हो रही हैं, इस अध्याय से यह भी पता चल जाता है।

लेकिन क्या इस मैले पानी का कोई हल नहीं है? इस सवाल के जवाब के लिए लेखक आपको हुगली नदी के किनारे बसे कोलकाता शहर ले जाते हैं और बताते हैं इस '*मैले पानी का सुनहरा सच*' क्या हो सकता है। यह अध्याय पूर्वी कोलकाता के मछुवारों के उस कौशल के बारे में बताता है कि कैसे उन्होंने मैले पानी के उपयोग को सीखा है। वे

इस मैले पानी के उपयोग से मछली पालन जैसे काम धंधों को कुशलता से चला रहे हैं, वह भी किसी खास तकनीकी ज्ञान के बगैर। अगले अध्याय '*पुतले हम माटी के*' में हमारे शरीर और उसके मल, शरीर में मौजूद जीवाणु और विषाणु आदि की दिलचस्प चर्चा की गई है। हमारा शरीर हमारा ही नहीं है बल्कि कई सालों के विकास के चरण में यह उन प्राणियों का घर भी है जो हमारे अस्तित्त्व के साथ ही हमसे जुड़े हुए हैं। लेकिन हमने अपने असंयमित व्यवहार से पृथ्वी के जीवन जगत्चक्र को बेतरह बिगाड़ दिया है। इसलिए हर रोज हमारे सामने एक नया वायरस चुनौती के साथ खड़ा होता है जो हमारे जीवन को लीलने के लिए तत्पर है।

अगले अध्याय के लिए लेखक '*खाद्य सुरक्षा की थल सेना*' नाम का इस्तेमाल करते हैं। इसमें वे उन कृत्रिम उर्वरकों के बारे में चर्चा कर रहे हैं जिसका इस्तेमाल हम अंधाधुंध होकर किये जा रहे हैं। खेती की उपज जैसे-जैसे बढ़ी वैसे-वैसे भूमि-संबंधी इस्तेमाल में एक बड़ा अंतर आया है। हमारी खुशी बेशक 'हरित क्रांति' से जन्म लेकर हमारे साथ बनी हुई है लेकिन क्या यह इतना सस्ता था? जमीन को उपजाऊ बनाने के कृत्रिम तत्वों के चलते प्राकृतिक तत्वों की अनदेखी बड़े पैमाने में की गई जो कि मल से जुड़ा हुआ है। नदियों में बहते उर्वरक हों या जमीनी पानी में घुले जहर, इंसान की जाति इस खाद्य सुरक्षा के पीछे सुरक्षित नहीं है। इस पाठ में लेखक ने जैविक और कृत्रिम खाद का मूल अर्थ और इनके प्रभाव का बेहतरीन प्रस्तुतिकरण किया है।

'*मल का थल विसर्जन और मलदर्शन*' जैसे दोनों अंतिम अध्याय पुस्तक की अहम कड़ियां हैं। लेखक लद्दाख का उदाहरण देते हुए कहते हैं कि जीने के मुश्किल हालातों में भी वहाँ के लोगों ने मल का सही निपटान करने की विधि का इस्तेमाल वर्षों पहले से शुरू कर लिया है। इसके अलावा इकोसैन शौचालय जैसे तरीकों की जानकारी दी गई है कि कैसे यह मल विसर्जन की विधि मल और मूत्र को अलग-अलग करती है। इसकी तरह अन्य तरीकों की क्या कामयाबी है और क्या नाकामयाबियाँ रही हैं, उसका वर्णन भी इस अध्याय में मिलता है। इसी के साथ व्हेलों के संदर्भ में एक दिलचस्प बात भी बताई गई है, जिसे पुस्तक पढ़कर समझना चाहिए।

मल-मूत्र पर जब भी चर्चा होती है तब एक ऐसा बहुत बड़ा समाज है जो नाक-भौंह सिकोड़कर मुँह पर रुमाल लगाने की तैयारी करने लगता है। लेकिन क्या यह इतना ही घिनौना है? पुस्तक पढ़कर यह पता चलता है कि यह घिनौना नहीं है बल्कि इस पृथ्वी पर जीने की प्रक्रिया में यह अहम हिस्सा है। घर जैसे नितांत निजी जगह के शौचालय में फ्लश के साथ जो मल बाहर की दुनिया का हिस्सा बनता है वह निजी नहीं तब सामाजिक बन जाता है। कई-कई बार फ्लश के बटन को टीपने वाली यह नई मनुष्य की सभ्यता यह नहीं जानती कि उनके मल का क्या होता है और इसका कितना असर खुद उन पर, अन्य लोगों पर, नदियों पर, सागरों व उसमें रहने वाले अन्य प्राणियों पर, भारत माता यानी जमीन आदि पर कैसे और कितना भयानक होता है। शुचिता का सारा तामझाम मल के साथ जुड़ा हुआ है। उस पर सबसे बड़ी विडम्बना यह है कि इस पेशे से जुड़े हुए लोगों को ही इंसान मानने से इंकार करने वाली सभ्यता भी हमारे पास ही है। सरल भाषा में लिखी गई इस पुस्तक को हर किसी को एक बार जरूर पढ़ना चाहिए। लेखक ने उपदेश देने की भाषा का कहीं भी इस्तेमाल नहीं किया बल्कि अपने अथक शोध और पठनीय मेहनत से एक समृद्ध पुस्तक को लिखा है।

*****